

प्राचीन-मध्यकालीन संगीताचार्य नारद एवं शुभंकर की रस व्यवस्था की प्रासंगिकता वर्तमान संगीत के संदर्भ में
डॉ० रेखा सेठ, आरती अग्रवाल

प्राचीन-मध्यकालीन संगीताचार्य नारद एवं शुभंकर की रस व्यवस्था की प्रासंगिकता वर्तमान संगीत के संदर्भ में

डॉ० रेखा सेठ*, आरती अग्रवाल**

*ऐसो० प्रोफे० एवं विभागाध्यक्षा, संगीत (गायन) विभाग, आई. एन. पी. जी. कॉलेज, मेरठ,

**शोधार्थी, नेट, जे. आर. एफ।

शोधपत्र का संक्षिप्त विवरण
इस प्रकार है:

डॉ० रेखा सेठ, आरती अग्रवाल, “प्राचीन-मध्यकालीन संगीताचार्य नारद एवं शुभंकर की रस व्यवस्था की प्रासंगिकता वर्तमान संगीत के संदर्भ में”, Artistic Narration 2017, Vol. VIII, No.1, pp. 74-85 http://anubooks.com/?page_id=2325

सार-संक्षेप

पूर्व काल की ज्ञान संपदा ऐसी अमूल्य धरोहर होती हैं जो समय के निरन्तर गतिमान एवं वर्द्धित होने के साथ और अधिक प्राचीन होती चली जाती हैं परन्तु उनकी मान्यता एवं महत्व कभी भी समाप्त नहीं होते अपितु कालखण्ड के व्यतीत होने के साथ वह ज्ञान सम्पदा और अधिक मूल्यवान बन जाती है। यही कारण है कि जब हम भविष्य को ध्यान में रखते हुए वर्तमान में कुछ नवीन अन्वेषण करते हैं तो हमें प्राचीन काल के झरोखों में झांकना ही पड़ता है। यदा-कदा समय की आवश्यकता एवं परिवर्तनशीलता के चलते कुछ अमूल्य ज्ञान समय की गर्त में धूमिल हो जाते हैं या पीछे छूट जाते हैं परन्तु किसी न किसी माध्यम द्वारा कभी न कभी वे अवश्य प्रकट हो जाते हैं। इसी क्रम में हम प्राचीन एवं मध्यकालीन संगीत शास्त्राचार्यों 'नारद' एवं 'शुभंकर' द्वारा कथित रस सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण ज्ञान सम्पदा पर चर्चा करेंगे जिनकी सार्थकता वर्तमान संगीत के संदर्भ में भी उतनी ही सार्थक सिद्ध हो रही है जितनी सदियों पूर्व रही होगी।

शब्द कूँजी:-रस, भाव, राग, काल, स्वरूप, लिंगात्मक, स्त्री, पुरुष, गम्भीर, षड्ज, ध्यान, स्वरूप, प्रकार, संगीत, ऋषभ, मकरंदकार, प्रयोग।

प्रस्तावना

रस एक व्यापक और विराट शब्द है, जो जीवन के हर क्षेत्र एवं पहलू में विद्यमान है, इसी कारण से रसका अर्थ उससे सम्बंधित विषय-विशेष एवं क्षेत्र में अनेक प्रकार से लगाया जाता रहा है। उदाहरणस्वरूप:- जिह्वा के सम्बन्ध में पदार्थ-रस, शरीर के अंदरूनी भाग में पाचक-रस, कानों के लिए शब्द-रस, मस्तिष्क के लिए वैचारिक-रस, हृदय के लिए भाव-रस, पूरे शरीर के बाह्य सौंदर्य एवं साज-सज्जा से उत्पन्न आकर्षण का रस और आत्मा के आंतरिक भाव-सौंदर्य से उत्पन्न आंतरिक भावरस। शब्दकोशों में देखें तो रस का अर्थ अनेक प्रकार से बताया गया है, जैसे:- "जल, स्वाद, शरबत, स्वादिष्ट, मीठा, तत्व, सार, आनन्द।" इसी प्रकार से कलाओं की सौंदर्यात्मक एवं सृजनात्मक अभिव्यक्ति से उत्पन्न रस भी कला प्रधान रस की श्रेणी में आता है क्योंकि वह किसी कला विशेष की अभिव्यक्ति स्रोत से उत्पन्न होता है। इसी कारण सभी चौंसठ कलाएँ स्वयं में रस का भण्डार हैं, जिनमें से संगीत कला गायन, वादन एवं नृत्यकी त्रिवेणी है। सभी कलाओं में संगीत कला को कला शिरोमणि भी कहा जाता है और वो इसलिए भी कहा जाता है क्योंकि उसके रस का आस्वादन करने हेतु दृश्य की भी आवश्यकता नहीं होती, केवल श्रवण से ही आप आनन्द ले सकते हैं, शब्द की भी मर्यादा नहीं है, केवल नाद रूप से आप रस-निष्पत्ति एवं भाव-आनन्दानुभूति कर सकते हैं क्योंकि संगीत से रस विलग नहीं है, अतः संगीत शास्त्राचार्यों ने रस पर भी अनेक विचार व्यक्त किये हैं। उनमें से सभी का वर्णन करना तो यहां संभव नहीं है किन्तु उनमें से दो शास्त्रकारों ने किस प्रकार रस को श्रेणीबद्ध (categorized) किया और किस प्रकार से परिभाषित किया, इसका विवरणात्मक अध्ययन करते हुए, उनके द्वारा बताए गए रस-प्रयोग की आज के संगीत अथवा रागों से उपयुक्तता को जोड़ने का प्रयास करेंगे। जिससे यह सिद्ध हो सके कि शताब्दियों से पूर्व रचे गये सिद्धांत आज के संदर्भ में भी अत्यंत उपयोगी, प्रभावी एवं विचारणीय हैं। इनमें से सर्वप्रथम हम 8 वीं सदी के 'नारद' के ग्रन्थ 'संगीत मकरंद' में वर्णित **स्वर-रस** के विषय में विचार प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसमें नारद अथवा **मकरंदकार** ने प्रत्येक स्वर के मूल एवं स्थायी रस को निश्चित करते हुए कहा है कि:-

"षड्जस्यादभुतवीरौ च ऋषभस्य च रौद्रकः।

गांधारस्य च शांतं च हास्याख्यं मध्यमस्य च॥ 47॥

पंचमस्य च श्रृंगारो वीभत्सो धैवतस्य च।

करुणा च निषादस्य सप्तस्थानरसा नव॥48॥"

अर्थात् षड्ज स्वर का रस अद्भुत एवं वीर, ऋषभ का रस रौद्र है। गंधार का रस शांत एवं मध्यम का रस हास्य है। पंचम का रस श्रृंगार, धैवत का रस वीभत्स है। निषाद का रस करुण है, इस प्रकार सात स्वरों में नौ स्वरों का स्थान है। यद्यपि नारद ने सात स्वरों में केवल आठ रसों का ही निर्धारण किया और भयानक रस को किसी भी स्वर में स्थापित नहीं किया परन्तु अंत में उन्होंने नौ रसों को सातों स्वरों में ही स्थापित बताया।

यदि सूक्ष्म एवं एकाग्र चित्त होकर स्वरों की इस रस व्यवस्था को हम ध्यान में रखते हुए

स्वरोच्चारण करें तो हमें अवश्य ही उन्हीं निर्धारित रसों की अनुभूति होती है। इस अनुभूति के फलस्वरूप एवं इस अनुभूति से विलग होकर भी यदि हम आज के रागों में प्रत्येक स्वर के प्रयुक्त प्रमाण को देखने का प्रयास करें तो इन प्रत्येक एकाकी स्वर से होती रस निष्पत्ति उस अमुक राग में उद्भूत होती रस एवं भाव की अभिव्यक्ति का प्रतिनिधित्व करती नज़र आएगी। **उदाहरणस्वरूपः**—मध्यम एवं पंचम को क्रमशः हास्य एवं श्रृंगार रस का द्योतक माना गया है, अतः ये दोनों रस चंचलता के भी प्रतीक हैं। सामान्यतः यह देखा भी गया है कि जिन रागों में मध्यम या पंचम का आधिक्य होता है उन रागों की प्रकृतिचंचल ही मानी जाती हैं। जिन रागों में ऋषभ एवं धैवत पर ठहराव होता है, वे राग रौद्र एवं वीभत्स रस के अधिक पोषक होते हैं। इनमें गम्भीरता का वास होता है। **जैसेः—भैरव।** रौद्र रस का सम्बन्ध भगवान् शिव के स्वरूप से भी माना जाता है और भैरव का सम्बन्ध इन दोनों से है। इसी प्रकार जिन रागों में गंधार पर ठहराव होता है उनमें करुणता आती है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण राग पूरिया और मारवा हैं। **पूरिया** में उसके स्वरूप के अनुसार मंद्र, मध्य एवं तार सप्तक में घूमते हुए बारम्बार गंधार पर रुक कर उसका अधिक उच्चारण करते हैं, जो सम्पूर्ण राग को शांत रस में परिवर्तित करने के लिए पर्याप्त है, शांत रस का आविर्भाव होने के कारण ही तो इस राग को **अनिद्रा** का रोग दूर करने के लिए **सर्वोत्तम संगीतौषधि** के रूप में भी देखा जाता है। जबकि इसी स्वरूप पर आधारित राग मारवा कभी भी शांत प्रतीत नहीं होता, जिसका कारण उसके ऋषभ पर ठहराव होना है, जो उसे गम्भीरता प्रदान करता है क्योंकि ऋषभ रौद्र रस का पोषक है। निषाद को करुण रस का पोषक माना गया है। सारंग जैसे रागों में निषाद की करुणता स्पष्ट ही झलकती है। षड्ज के विषय में जो उसे अद्भुत एवं वीर रस का पोषक बताया गया है, वह सहज ही सत्य सिद्ध होता है। षड्ज का स्वरूप ही ऐसा है कि प्रत्येक राग में यह सम्पूर्णता बनाए रखता है। इसका लगाव स्वयं में इतना सपाट है कि इसका उच्चारण वास्तव में वीरता का अनुभव कराता है।

यह तो उन रागों के सम्बन्ध में संक्षिप्त वार्ता हुई जिसमें उनके स्वरूप के आधार पर सात स्वरों के भिन्न-भिन्न एकाकी रस प्रभाव का असर देखा गया। परन्तु अनेक राग एवं अंग प्रधान राग ऐसे भी हैं जो अपने विशेष स्वर-समूह के लिए पहचाने जाते हैं एवं जिनमें किसी एक स्वर की ही नहीं अपितु प्रयुक्त होने वाली स्वर-संगतियों के अन्तर्गत अनेकानेक स्वरों की रस निष्पत्ति उन गायी जाने वाली स्वर टुकड़ियों के आधार पर बारम्बार गतिमान बनी रहती है एवं प्रत्येक स्वर के अनुरूप रस का प्रत्येक क्षण मात्र में ही अनुभव देने लगती हैं। **उदाहरणस्वरूपः— कान्हड़ा अंग,** जिसमें गम रे सा की स्वर-संगति है। गंधार पर न्यास इसे शांत रस में बनाए रखता है, दृष्टिकोण की सूक्ष्मता के आधार पर एवं इन चार स्वरों के एकाकी रस की ओर ध्यान संकेंद्रित करते हुए, इस टुकड़े को गायी जाए तो प्रत्येक स्वर के रस का अनुभव किया जा सकता है। परन्तु जब यह दरबारी के साथ जुड़ता है तो गम्भीरता के आधि-क्य को संतुलित करने लगता है एवं जब मल्हार के साथ जुड़ता है तो इसका शांत स्वरूप मल्हार की श्रृंगारिक चंचलता को संतुलित करके मेघ एवं वर्षा विषयक आनन्द का आविर्भाव करने लगता है। इस प्रकार प्रत्येक एकाकी स्वर का रस निर्धारण आज भी एकाकी स्वर के संदर्भ में उतना ही सटीक प्रतीत होता है, जितना उस काल में रहा होगा और संगीत मनीषियों ने इसका निश्चयीकरण करते हुए

ग्रंथोल्लेख किया होगा। यदि आज के समय में हम इन एकाकी स्वरों के रस संदर्भ को ध्यान में रखते हुए स्वरोच्चारण करें तो गायक को उन सभी रसों का आस्वादन सहजता से हो जाएगा।

प्रत्येक स्वर के रस निर्धारण के पश्चात् 'संगीत मकरंद' के 'नारद' ने रस को अथवा रस रूपी भाव को 'लिंग' के आधार पर वर्गीकृत किया अर्थात् प्रत्येक रस को लिंगात्मक मानवीय प्रवृत्ति के दृष्टिकोण से नारद ने देखा। जैसे:-

“रौद्रेषद्भुते तथा वीरे पुरागैः परिगीयते।

श्रृंगारहास्यकरुणं स्त्रीरागैश्च प्रगीयते ॥ 63 ॥

भयानके च वीभत्से शांते गायन्नपुंसके।

अनेन विधिना ज्ञात्वा गेयं सर्वार्थसाधनम् ॥ 64 ॥”³

अर्थात् रौद्र, अद्भुत एवं वीर रस पुरुष प्रधान रागों के गायन से प्राप्त हो जाते हैं। श्रृंगार, हास्य एवं करुण रस स्त्री प्रधान रागों को गाने से स्पष्ट हो जाते हैं। भयानक, वीभत्स एवं शांत रस नपुंसक रागों को गाने से प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार निष्पाप एवं नियमों को जान कर राग गाने से अनेक लक्ष्यों, उद्देश्यों एवं प्रयोजनों की प्राप्ति होती है।

यहां नारद कष्ट रसों का भावों की प्रवृत्ति के अनुसार लिंगात्मक विभाजन पर्याप्त मौलिक, सरलतम एवं सदा ग्रहणीय विचार है, जिसे कभी भी नकारा नहीं जा सकता। रौद्र, अद्भुत एवं वीर ये तीन रस हैं ही ऐसे कि इनमें पौरुष तत्व की विद्यमानता लक्षित होती है। यद्यपि ऐसा नहीं है कि स्त्रीत्व में अथवा स्त्री भाव में भी ये तत्व ना पाए जाते हों, निश्चित रूप से पाए जाते हैं, परन्तु इस लिंग की मर्यादा में समाहित न होने के कारण ऐसे भावों का दर्शन स्त्री स्वरूप में विलक्षणता को दर्शाता है। एक ही राग का स्त्री भाव प्रधान स्वरूप एवं पुरुष भाव प्रधान स्वरूप हमें मध्यकालीन ग्रंथों में राग-रागिनी एवं राग-ध्यान परंपरा के अन्तर्गत गाये जाने वाले रागों में बहुलता से मिलता है, जहां एक ही राग को किसी ग्रंथकार ने स्त्री भाव से गाकर, अपनी ध्यान रचना में प्रस्तुत किया एवं किसी अन्य ग्रंथकार ने उसी राग को पुरुष भाव से गाकर अपनी ध्यान रचना में पुरुष स्वरूप में प्रस्तुत किया। इस प्रकार की क्रियात्मक दक्षता उस समय के विद्वान संगीतकारों की रागों के प्रति भाव नियंत्रण एवं इच्छानुसार भाव स्वरूपनिरूपण के सञ्जन की शक्ति का परिचायक है। उदाहरणस्वरूप:- 'कृष्णानन्द व्यास' कृत 'रागकल्पद्रुम' में संकलित एक रागिनी का ध्यान मिलता है, जिसमें उसके अन्तर्गत समाहित स्त्रीगत दैवीय स्वरूप के भाव में रौद्र रस का तो दर्शन होता ही है, परन्तु साथ ही भयानक रस का भी दिग्दर्शन हो जाता है, जिसकी उत्पत्ति संगीत में राग के माध्यम से सर्वाधिक कठिन होती है। उस रागिनी का नाम "योगिनी"⁴ है। वीर रस से सम्बन्धित स्त्री भाव हमें मध्यकालीन ग्रंथों में देशाख एवं सैन्धवीनामक रागिनी में सहजता से देखने को मिलता है।

पुरुष प्रधान रसों के पश्चात् नारद ने स्त्री प्रधान रसों में श्रृंगार, हास्य एवं करुण जैसे हल्के रसों को स्थान दिया। जिस प्रकार स्त्रियोचित भाव कोमलता से युक्त होते हैं, वैसी ही कोमलता इन रसों में विद्यमान रहती है। इसके पश्चात् नारद ने भयानक, वीभत्स एवं शांत रसों को नपुंसक श्रेणी में रखा।

रागों के सम्बन्ध में नारद का यहांनपुंसक शब्द से तात्पर्य शाब्दिक नहीं है, अपितु सांकेतिक अर्थ है क्योंकि प्राचीन काल से लेकर उत्तर मध्यकाल तक के ग्रंथों में हमें यह सहजता से देखने को मिल जाता है कि ग्रंथकारों ने अपनी इच्छानुसार राग भाव की सषजनात्मक क्षमता के बल पर, किसी साधक ने एक ही राग को पुरुष भाव से गाया अथवा देखा एवं उसी राग को किसी अन्य साधक ने स्त्री भाव से देखा। इससे भी अधिक आगे बढ़कर एक ग्रंथकार ने एक ही राग के एक स्वरूप में स्त्री एवं एक स्वरूप में पुरुष भाव से युक्त ध्यान को साधा। जिनमें 'निरूपणाकार' (चत्वारिंशच्छत रागनिरूपणम् के रचनाकार नारद) एवं 'सोमनाथ' विशेष उल्लेखनीय हैं। इसी कारण नारद (मकरंदकार) ने कुछ रसों को नपुंसक श्रेणी में रखकर यह स्पष्ट किया कि इन रसों से आप स्त्री भाव युक्त होकर भी गा सकते हैं और पुरुष भाव से भी। तत्कालीन राग भाव से सम्बन्धित इस प्रकार के प्रयोगात्मक प्रयोजन से हमें यह ज्ञात होता है कि उस समय के संगीत साधक राग के भाव एवं स्वरूप के प्रस्फुटन में इतने पारंगत एवं सिद्धहस्त थे कि राग भाव की आधारशिला को परिवर्तित करने के लिए उन्हें राग के स्वरूप में परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं होती थी अपितु वे अपनी राग साधना की शक्ति से यह सम्भव कर देते थे। यही कारण है कि हमें उस काल-खण्ड में एक ही राग के दोनों स्वरूपों का दिग्दर्शन हो जाता है। उदाहरणस्वरूप:-राग बंगाल-बंगाली, कान्हड़ा-कान्हड़ी, देशाख-देशाखी, बसन्त-बसन्ती आदि।

यद्यपि रागों के प्रति लिंगात्मक दृष्टि के अनुकूल भाव प्रधानता उत्तर मध्यकाल तक ही सीमित थी और आधुनिक काल के आरम्भ होने के साथ इसका लोप हो गया किन्तु नारद का यह लिंगात्मक रस वर्गीकरण आज के समय में भी, आज के रागों के रस निश्चयीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है और वो भी ऐसी स्थिति में जहां रागों के मूल रस की स्थिरता लगभग लुप्त सी हो चुकी है। नारद द्वारा रस की प्रवृत्ति के आधार पर किया गया यह प्रयोग निर्धारण आज के रागों में किस प्रकार से फलदायक हो सकता है, उसका वर्णन अग्रलिखित है:-

वर्तमान समय में रागों के अर्न्तगत पूर्ण रूप से स्त्री प्रधान एवं पुरुष प्रधान भाव देखने एवं समझने का चलन नहीं रहा है परन्तु आंशिक रूप से आज भी रागों में इस प्रकार के सूक्ष्म रूप से किए गए प्रयोग एवं अनुभव हमें प्राप्त होते ही रहते हैं। इसका सर्वप्रमुख एवं सर्वप्रसिद्ध उदाहरण **दरबारी कान्हड़ा** है। वास्तव में यह राग कान्हड़ा अंग का प्रमुख राग है, जो पुरुष प्रधान है किन्तु जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि मध्यकाल में प्रत्येक राग के दो रूप नाम हमें मिलते हैं, जैसे:-कान्हड़ा-कान्हड़ी, पंचम-पंचमी, मल्लार-मल्लारी आदि, जो कदाचित् एक ही राग को पुरुष एवं स्त्री दो भिन्न भावों से गाने का परिणाम था। वर्तमान काल में जो दरबारी कान्हड़ा गाया जाता है वह मूल कान्हड़ा ही है और पुरुष प्रधान राग होने के साथ-साथ गंभीर प्रकृति का भी है। इसका चलन इस प्रकार है:-

सा धनिरेसा, ध—नि प, धनि रे सा, रे ग— म पग— म रेसा, सा रे ग— म प ध—नि प म प ग— म रे सा।

अति कोमल धैवत एवं कोमल गंधार पर न्यास इसकी गंभीरता बढ़ा देता है। मकरंदकार के रस नियमानुसार इसे पुरुष श्रेणी के रौद्र एवं वीर रस से इसका भाव नहीं मिलता किन्तु अद्भुत रस की श्रेणी में इसे रखा जा सकता है किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि दरबारी की भांति कान्हड़ा अंग के सभी राग

गंभीर हों। इसी का समप्रकर्षितक राग अड़ाना है। आरोह में शुद्ध निषाद का प्रयोग रे म प एवं म प सां की स्वर संगति, दरबारी के धैवत की भांति अड़ाना का धैवत अति कोमल न होना आदि कारणों से यह राग दरबारी से भिन्न भाव उत्पन्न करता है। इसका चलन इस प्रकार है:-

सा, रे म प, नि सां, म प सां, धनि प, म - प - ग म रे सा। कोमल स्वरों पर न्यास न होने के कारण इस राग में चंचलता बनी रहती है और उत्तरांग में यह खूब खिलता है, अतः मकरंदकार के नियमानुसार इसे स्त्री श्रेणी के श्रृंगार रस में रखा जाना चाहिए क्योंकि हास्य रस इसमें नहीं दिखता एवं उत्तरांग में चंचल चलन होने के कारण रे म प नि सां, म प सां की संगति करुणा जन्य अथवा करुण रस प्रधान प्रतीत नहीं होती है।

दरबारी एवं अड़ाना के समकक्ष परन्तु कान्हड़ा अंग का न होने के बावजूद आसावरी राग का चलन कुछ-कुछ अड़ाना से मिलता है। आसावरी राग के आरोह में ग नि वर्जित होने एवं चलन रे म प, निध प, म प ध सां, निध प, म ग रे सा होने के कारण इसमें गम्भीरताकम किन्तु चंचलता का भी अभाव रहता है। अतः इसे स्त्री श्रेणी के करुण रस में रहना चाहिए। इनका संक्षिप्त अवलोकन इस प्रकार है:-

दरबारी:—सा ध —नि रे सा, सा रे ग— म प ध—नि— प, म प ग— म रे सा, सा —ध —नि रे सा। (अद्भुत रस)

अड़ाना:— सा रे म प नि सां, म प सां, सां धनि प, म प ग म रे सा। (श्रृंगार रस)

आसावरी:—सा रे म प ध सा, निध प, म ग रे सा, रे म प निध प म प ग, रे म प। (करुण रस)

मालकौंस:—इस राग में गंधार, धैवत, निषाद कोमल एवं पंचम—ऋषभ वर्जित है। कोमल स्वरों पर अत्यधिक न्यास एवं मध्यम के साथ मींड युक्त चलन इसे गंभीर प्रकर्षित का बना देता है। अतः इसे पुरुष राग की श्रेणी में रखना चाहिए, किन्तु मकरंदकार के नियमानुसार रौद्र या अद्भुत रस के समान यह प्रतीत नहीं होता। अतः इसे वीर रस प्रधान मानना चाहिए। 'प० विष्णु नारायण भातखण्डे' जी ने अपने ग्रन्थ 'भारतीय संगीत शास्त्र' में भी इसे वीर रस प्रधान ही माना है। 'मध्यकालीन मालवकैशिक अथवा कैशिक नामक मालकौंस भी वीर-रस पुरुष-प्रधान राग था। वर्तमान काल में इसे श्रृंगार रस का मानने की भूल की जाती है। परन्तु 'विनायक राव पटवर्धन' जी ने भी यह स्पष्ट किया है कि "मालकौंस वीर रस का राग है।" साथ ही ध्रुपद, धमार जैसी गम्भीर गीत रचना भी इसमें मिलती है, टप्पा, तुमरी नहीं। अतः यह उन लोगों के लिए स्पष्ट प्रमाण है जो मालकौंस को श्रृंगार रस प्रधान मानते हैं।

इसका ही समप्रकर्षितक राग 'चंद्रकौंस' है। मालकौंस के कोमल निषाद को शुद्ध कर देने से इसकी उत्पत्ति होती है। अतः कोमल गंधार-धैवत के साथ मध्यम की मींड युक्त बहुलता से जो निरंतर गंभीरता उत्पन्न होती है वह यकायक पूर्वांग एवं उत्तरांग में शुद्ध निषाद के प्रयोग से टूटती रहती है किन्तु इसका निषाद कोमल धैवत के साथ षड्ज पर जाते हुए लेते हैं। जैसे:-सा ध नि सा। सां ध नि सां। शुद्ध निषाद इस राग का प्राण स्वर है। पूरे राग में यही स्वर चमकता है। इससे राग का स्वरूप खिलता है किन्तु इसका निषाद सदैव षड्ज के कण के साथ विशेष ढंग से झटके के साथ लिया जाता है जो गम्भीरता के भाव में विचित्रता उत्पन्न करता है। अतः मालकौंस से कम गम्भीर होकर भी यह स्त्री श्रेणी के करुण

या श्रृंगार रस में नहीं रखना चाहिए। चूंकि इसमें पुरुष एवं स्त्री दोनों ही भाव दिखते हैं, अतः इसे नपुंसक श्रेणी के वीभत्स रस में रखना चाहिए। रागों के सम्बन्ध में वीभत्स से तात्पर्य भद्रेपन से नहीं होता क्योंकि राग सदैव मधुर ही होता है, इसलिए राग कहलाता है। यहां इसका तात्पर्य विचित्रता से लगाना चाहिए। चंद्रकौंस को वीभत्स रस की श्रेणी में रखने का मूल कारण षड्ज कण युक्त निषाद का उच्चारण है।

दुर्गा राग भूपाली के गंधार के स्थान पर मध्यम के प्रयोग से बना है। इसका चलन इस प्रकार है:—सा रे ध सा, रे प, ध म रे ध सा। ध सां रें धं सां। “पं० रामाश्रय झां ‘रामरंग’ जी के अनुसार इसके स्वरूप में शुद्धमल्हार एवं जलधर केदार इन दोनों रागों का आभास होता है। परन्तु चलन भेद से यह अलग बने रहते हैं। एक मल्हार अंग प्रधान है, जिसमें कण, मींड युक्त रे म प की संगति होती है और दूसरा केदार अंग प्रधान है, जिसमें ध म का मींड युक्त एवं मध्यम का अधिक प्रयोग होता है। जबकि दुर्गा में धैवत अधिक चमकता है। अवरोह में ऋषभ के साथ बारम्बार धैवत का प्रयोग इसे दुर्गा की अपनी पहचान देता है। मल्हार एवं केदार अंग की गम्भीरता यह संगति नियंत्रित कर लेती है। ‘दुर्गा राग की प्रकृति न अधिक चंचल है एवं न अधिक गम्भीर।’⁶ अतः मकरंदकार के नियमानुसार इसे नपुंसक श्रेणी में रखते हैं, किन्तु न तो इसका स्वरूप वीभत्स है और न ही भयानक। अतः इसे शांत रस में रखा जा सकता है।

पूरिया—मारवा—सोहनी ये तीनों राग परस्पर पर्याप्त समानता रखते हैं किन्तु चलन भेद के कारण ये अलग पहचाने जाते हैं। पूरिया का चलन इस प्रकार है:—सा निरे सा, नि ध नि रे सा, नि रे ग ——रे सा, म ग ——म ध —— म ग —— नि रे सा। मंद्र सप्तक में चलन धैवत—निषाद के साथ ऋषभ का अल्प प्रयोग एवं शुद्ध गंधार पर न्यास इसकी प्रमुख विशेषता है। इसकी गंधार मध्यम के अल्प कण के साथ प्रयुक्त होता है। सा नि रेसा, नि ध नि रे सा की गम्भीरता को शुद्ध गंधार पर न्यास नियंत्रित कर लेता है। गम्भीरता कम होने के कारण इसे मकरंदकार की नियमावली में स्त्री श्रेणी के करुण रस में रखा जाना चाहिए।

पूरिया के ही शुद्ध गंधार को अल्प करने एवं कोमल ऋषभ पर न्यास देने से मारवा राग का आविर्भाव हो जाता है। जैसे:—नि रे —— सा, नि रे —— ग रे —— सा। चूंकि इस राग में कोमल ऋषभ का आधिपत्य है, अतः बारम्बार षड्ज को दिखाना आवश्यक है। अन्यथा कोमल ऋषभ षड्ज का स्थान ग्रहण कर लेगा। “मारवा राग की प्रकृति साधारण ही है, यह न चंचल है और न ही गम्भीर। यह शुष्क प्रकृति का राग है।”⁷ अतः मकरंदकार के नियमों में इसे नपुंसक श्रेणी में रखते हुए शांत रस का राग मानना चाहिए। सोहनी के स्वर भी पूरिया और मारवा के समान हैं किन्तु जिस प्रकार पूरिया में शुद्ध गंधार, मारवा में कोमल ऋषभ पर न्यास है, उसी प्रकार इस राग में धग एवं नि ध की स्वर संगति अधिक प्रयुक्त होती है और इसे अन्य से भिन्न कर देती है। “सोहनी उत्तरांग प्रधान राग है। सोहनी राग चंचल प्रकृति का है।”⁸ अतः इसे मकरंदकार के नियमों में स्त्री श्रेणी में रखते हुए श्रृंगार रस प्रधान मानना चाहिए। इनका एक संक्षिप्त अवलोकन इस प्रकार है:—

पूरिया:—सा नि ध नि रे सा, नि रे ग ——, रेसा, म ग ——रेसा।(करुण रस)

मारवा:—सा नि रे—सा, नि ध नि रे— ग रे — सा, ग रे— ग म ध म ग रे— सा। (शांत रस)

सोहनी:—सा, ग, म ध ग, ग— म ध नि ध, नि ध, ग म ध नि सां — नि ध नि ध। (श्रृंगार रस)

वृंदावनी सारंग का चलन इस प्रकार है:—रे म प, रे म रे, नि सा, नि सा रे म प नि सां, नि प म रे सा। सारंग अंग का होने के कारण इसकी प्रकृति कुछ गम्भीर अवश्य है किन्तु दोनों निषाद का प्रयोग इसकी गम्भीरता कम करता रहता है। "इस प्रकार यह पूर्वांग राग है। इस राग की प्रकृति साधारण है। प्रकृति चंचल न होने के कारण इसमें टप्पा आदि नहीं दिखाई देते।" अतः इसे मकरंदकार के सिद्धांत में नपुंसक श्रेणी में रखते हुए शांत रस में रखा जा सकता है।

मध्माद सारंगराग की उत्पत्ति वृंदावनी सारंग के शुद्ध निषाद को कोमल कर देने से होती है किन्तु इसके चलन में स्त्रियोचित्त भाव का आभास होता है। रे म प नि की संगति में अवरोहात्मक मीड युक्त प्रयोग इसे श्रृंगारिकता प्रदान करता है। जैसे:—रे म रे, प म रे, नि प म रे नि सा। अतः इसे स्त्री श्रेणी में श्रृंगार रस प्रधान राग में कहा जाना चाहिए।

लंकदहन सारंग राग सारंग में जयजयवंती राग के प्रसिद्ध टुकड़े के मिश्रण से बना है। जैसे:—रे म प नि म प, नि प म रे ग रे सा। इस प्रकार का चलन इसे गम्भीर प्रकृति का राग बना देता है किन्तु इसे रौद्र एवं वीर रस में नहीं अपितु अद्भुत रस प्रधान राग मानना चाहिए। इन रागों का संक्षिप्त अवलोकन इस प्रकार है:—

वृंदावनी सारंग:— सा रे म रे नि सा, रे म प नि सां नि प म रे म प। (शांत रस)

मध्माद सारंग:—नि प म रे, प म रे, नि सा। (श्रृंगार रस)

लंकदहन सारंग:—नि सा, रे म प, नि प म रे ग रे सा। (अद्भुत रस)

पूर्वी राग भी गम्भीर प्रकृति में आता है किन्तु इसमें पुरुषोचित्त गम्भीरता प्रतीत नहीं होती। ऋषभ—धैवत कोमल, दोनों मध्यम का प्रयोग पूर्वी राग में इस प्रकार होता है:—नि रे ग, रे ग म प, प ध म प, ग म ग, म ग रे ग म ग, म ग रे सा। इस प्रकार शुद्ध मध्यम का प्रयोग, कोमल स्वरों की अपेक्षा शुद्ध स्वरों पर ठहराव इसकी गम्भीरता को कम कर देता है। अतः मकरंदकार के नियमों में इसे स्त्री श्रेणी में रखते हुए करुण रस प्रधान मानना चाहिए।

बागेश्वरी राग में गंधार निषाद कोमल के साथ म ग म ध की संगति बारम्बार आती है। पूर्वांग प्रधान होते हुए भी इसकी गम्भीरता को शुद्ध मध्यम धैवत की संगति कम कर देती है। अतः इसे स्त्री श्रेणी के करुण रस में मानना चाहिए। इसका चलन इस प्रकार है:—सा नि ध नि सा, म ग, म ध नि ध म ग म ग रे सा। इसमें टप्पा, तुमरी आदि नहीं होते एवं इसकी प्रकृति भी साधारण मानी जाती है। इस प्रकार से 8 वीं सदी का स्वर रस वर्गीकरण एवं रस के प्रति निर्धारित हुआ लिंगात्मक दृष्टिकोण 21 वीं सदी में भी कितना उपयोगी, सार्थक एवं सटीक सिद्ध हो सकता है, इसका हमें भान हुआ। यही कारण है कि संगीत ही नहीं अपितु किसी भी क्षेत्र में सदैव ही यह अवश्य कहा जाता है कि हम उस सम्बन्धित क्षेत्र अथवा विषय में कितना भी आगे बढ़ जाएँ परन्तु अपनी प्राचीन धरोहरों, संपदाओं एवं परंपराओं

को कभी भी भुलाना अथवा पीछे नहीं छोड़ना चाहिए जिस प्रकार हम नारद के इन दो प्रयोगों के द्वारा आज के रागों में ही नहीं अपितु स्वरों में भी एकाकी रस को खोज सकते हैं एवं आज के रागों में हो चुकी रस भटकाव की स्थिति को नियंत्रित कर सकते हैं तो अवश्य ही हम उन रागों में बसे रस के माध्यम से लौकिकता की अपेक्षा सात्विक भाव की ओर भी उन्मुख हो सकते हैं। इस प्रयास का मार्गदर्शन हमें 15 वीं सदी के 'शुभंकर' कल्प 'संगीत-दामोदर' में वर्णित रसों में निहित किए गए दैवीय स्वरूप में प्राप्त कर सकते हैं, इसके लिए सर्वप्रथम हमें यह समझ लेना आवश्यक है कि राग का रस और उसका भाव कोई दो अलग विषय नहीं हैं अपितु ये एक ही हैं, इसका स्पष्टीकरण शुभंकर ने इस प्रकार किया है:-

“रस भावसमुत्पन्नावस्थानुकरणन्तु यत्।

लयमानसमारब्धं तन्नाटयमिति कीर्तितम्।।”¹⁰

अर्थात् जिस प्रकार लय के मापक ताल के साथ आरम्भ हुए नाट्य की ख्याति चारों ओर प्रसारित होती है, ठीक उसी प्रकार रस और भाव एक साथ उत्पन्न या (आरम्भ)होकर, एक दूसरे का अनुसरण करते हुए यथा स्थिति तक पहुंचते हैं।

यहां 'शुभंकर' ने रस एवं भाव को परस्पर अनुकरणीय कहा है अर्थात् रस के अनुकूल ही भाव है एवं भाव के अनुकूल ही रस निर्धारित होता है। अतः यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन एवं मध्यकालीन राग-ध्यान श्लोकों में जो भाव दर्शाया गया वही उसका रस था अथवा यह कहा जा सकता है कि राग-गायन से जो भाव उत्पन्न हुआ उसके अनुकूल ध्यान अवधारणा बनी एवं उस ध्यान में अनुभूत भाव का शाब्दिक चित्रण करते हुए रस-निर्धारण हुआ।

“न भावो रसहीनोष्स्ति न रसो भाववर्जितः।

परस्परकृतासिद्धिरनयोः रसभावयोः।।

इति रसभावयोर्भेदाच्च।।”¹¹

अर्थात् न तो भाव रस हीन होता है और न ही रस भाव हीन होता है। रस और भाव एक दूसरे की इस प्रकार सिद्धि करते हैं एवं इसी प्रकार रस और भाव में भेद भी कहे गये हैं। यहां शुभंकर ने रस एवं भाव को एक दूसरे के बिना अस्तित्व हीन कहा है, अर्थात् भाव के अन्दर रस अवश्य छिपा रहता है एवं रस रूपी प्रतिफल भाव के बिना खोखला है, तब वह रस ही नहीं रहेगा। रस एवं भाव एक दूसरे के पूरक हैं। परस्पर अस्तित्व की सिद्धि करते हुए ये दोनों भिन्न विषय बने रहते हैं। यही इनमें अन्तर है।

यहां इस विवरण द्वारा शुभंकर ने यह स्पष्ट किया है कि राग का रस ही उसके भाव का दर्पण है। अतः यदि रस की प्रवृत्ति को लौकिकता से जोड़ेंगे तो भाव भी लौकिक बनेगा किन्तु यदि रस की प्रवृत्ति को सात्विकता एवं दिव्यता की ओर उन्मुख करेंगे तो राग की भी छवि वैसी ही अनुभूत होगी। इस सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए शुभंकर ने रस के स्वरूप का दैवीय स्वरूप में वर्णन किया और यही कारण है कि शुभंकर ने रसों को भी भगवान् शिव के पांच मुखों से उत्पन्न बताते हुए कहा कि “शिव के पश्चिम मुख से श्रृंगार रस, उत्तर मुख से वीर रस, दक्षिण मुख से भयानक एवं वीभत्स रस, पूर्व मुख

से रौद्र, अद्भुत रस एवं पंचम मुख से करुण, शांत रस की उत्पत्ति हुई, नौवा रस भाव— विभाव से हीन कहा गया है।¹² जो कदाचित् हास्य रस है। रसों के अन्तर्गत दैवीय भाव जिस प्रकार से शुभंकर ने निधि अरि रित किया वह इस प्रकार है:—

श्रृंगार रस:—“श्रृंगारः श्यामवर्णोष्णं कथितो विष्णुदैवतः।।”¹³

अर्थात् श्रृंगार का वर्ण श्याम एवं देवता विष्णु माने गये हैं। यहां श्रृंगार रस के लिए भगवान् विष्णु का चयन इसलिए किया गया है क्योंकि त्रिदेवों में एक वे ही हैं जिनके अवतार सात्विक मनोवृत्ति के साथ भौतिक सुखों एवं भोगों का आनन्द लेते हुए दिग्दर्शित होते हैं। संसार में रहकर भी उससे विलग होकर रहने का संदेश बारम्बार उन्होंने अपने अवतारों के माध्यम से दिया है। आज के रागों में अधिकांशतः श्रृंगार रस की ही निष्पत्ति की जाने लगी है, ऐसे में उसके स्वरूप एवं भाव में नारायण विष्णु का दिग्दर्शन भौतिक भाव की ओर जाने वाली मानसिकता को शुद्ध करने में सहायक है।

हास्य रस:—“शुक्लवर्णो हास्यरसः प्रोक्तः प्रथमदैवतः।।”¹⁴

अर्थात् हास्य रस का वर्ण शुक्ल एवं देवता प्रथम माने गये हैं। यहां प्रथम देवता से तात्पर्य कदाचित् गणेश से माना जा सकता है क्योंकि सर्वप्रथम देवों में वे ही प्रथम पूजनीय हैं। यद्यपि हास्य रस रागों के भावों में यकायक प्राप्त नहीं होता किन्तु प्रसंगानुकूल उत्पन्न किया जा सकता है। अप्रत्यक्ष रूप से इसकी प्रकृति चंचल होने के कारण इसमें प्रथम देवता गणेश का ध्यान आनन्ददायक प्रतीत होगा।

करुण रस:—“तरेपन वर्ष से अधिक की आयु वाला, कपोत के अंगों के समान उज्ज्वल, विरुक्ष (रूखा, औषधि स्वरूप) शूद्र कुल अथवा जाति का, यम जिसके देवता हैं, ऐसा प्रसिद्ध करुण बताया गया है।”¹⁵

यद्यपि यहां करुण रस के देवता यम बताए गए हैं क्योंकि यहां करुण का अथवा शोक जन्य कारण मृत्यु को माना गया है किन्तु करुणता रागों के भावों में मृत्यु से सम्बन्धित न होते हुए, विरह की वेदना तक अधिक सीमित रहती है, अतः यहां कदाचित् राग सम्बन्धी करुण रस हेतु यम का ध्यान अनुचित प्रतीत हो किन्तु करुणता के शोक भाव को ध्यान में रखते हुए इसके देवता यही उचित प्रतीत होते हैं।

रौद्र रस:—“पचास वर्ष की आयु वाला, अति हृष्ट—पुष्ट, शूद्र कुल में उत्पन्न, भयानक, रूद्र जिसके देवता हैं, रक्त वर्ण से युक्त, निःसंदेह ऐसा रौद्र कहा गया है।”¹⁶

रौद्र रस के नाम के अनुरूप इसके देवता अथवा अधिष्ठाता भगवान् शिव के अवतार रूद्र कहे गए हैं। गम्भीर प्रकृति के एवं सांयकाल के पश्चात् के रागों में इस रस की अनुभूति होती है एवं अधिष्ठाता देव के ध्यान से हम उस रस एवं भाव में दिव्यता की ओर जा सकते हैं।

वीर रस:—“गहरे लाल रंग की लालिमा लिए आभायुक्त युवा, अत्यन्त बलवान्, सम्राट के आभूषणों से सुशोभित, राजवंश अथवा क्षत्रिय वंश का, देवताओं के राजा (इन्द्र) के समान अत्यन्त साहस से युक्त आदरणीय वीर रस है।”¹⁷

वीर रस में बलशाली योद्धा के स्वरूप में देवों के राजा का स्वरूप निश्चित किया गया है, वीर रस प्रधान रागों में इस प्रकार के स्वरूप का आह्वान सम्बन्धित रस को और अधिक पुष्ट करता है।

भयानक रस:—“शूद्र जाति (चार वर्णों में सबसे अन्तिम वर्ण) अथवा कुल का, भीषण रूप धारण किए, काल जिसके देवता कहे जाते हैं, भय को जन्म देने वाला ऐसा भयानक रस है।”¹⁸

भय को जन्म देने वाला भयानक रस रौद्रता की अति में भयानक तत्व को धारण कर लेता है किन्तु संगीत में विशेषकर राग के सम्बन्ध में जिसको रंजकता का विशेष कारण माना गया है, अतः रागों में भयानक रस को सहजता से नहीं लिया जाता।

वीभत्स रस—“वृष (बादल अथवा शिव के विशेषण बैल) के लावण्य से युक्त, महाकाल इसके देवता हैं, इसका वर्ण नीला कहा गया है।”¹⁹

भयानक रस की ही भांति वीभत्स भी रंजक तत्व को ध्यान में रखते हुए राग रस में उत्पन्न होने नहीं दिया जाता किन्तु ऐसा भी नहीं है कि संगीत में इन दोनों रसों की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती। प्रसंगानुकूल स्वरों पर आच्छादित शब्दों के माध्यम से इन रसों को भी रागों अथवा धुनों में उत्पन्न किया जा सकता है।

अद्भुत रस—“स्वर्ण के समान कांति युक्त छवि वाला, धैर्यशील नेत्रों वाला, सुन्दर, परमेष्ठ (ब्रह्मा, विष्णु, महेश अथवा त्रिदेव) जिसके देव हैं, पच्चीस वर्ष के स्वभाव वाला वैश्य वंश (चारों वर्णों में तीसरा वर्ण)का ऐसा अद्भुत रस कहा जाता है।”²⁰

रागों द्वारा उद्भूत होने वाली दिव्यता एवं विलक्षणता की अनुभूति अद्भुत रस के माध्यम से होती है। इसी कारण इस रस का स्वरूप भी उतना ही मनोहारी एवं स्वर्ण कान्ति से युक्त कहा गया है। दिव्यता एवं विलक्षणता का समावेश होने के कारण ही इस रस के देवता तीनों प्रमुख देव ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश कहे गए हैं। जिनसे अधिक दिव्य, अलौकिक एवं विलक्षण कुछ भी नहीं है। इस रस की अनुभूति किसी भी राग के किसी भी रस के चरमोत्कर्ष पर पहुंचने पर प्राप्त हो सकती है।

शांत रस—“छह वर्ष से अधिक की आयु वाला, हरि जिसके देवता हैं, निर्वेद भाव (जुगुप्सा) को उत्पन्न करने वाला, शुद्ध कुल में उत्पन्न, श्वेत स्फटिक की भांति जिसकी देह कान्ति है, समस्त भद्र जन जिसका आश्रय लेते हैं, ऐसा शांत रस है।”²¹

शांत रस की प्रवृत्ति के अनुरूप इसके वर्ण को श्वेत बताया गया है। इसके देवता हरि कहे गए हैं, जिनके नाम श्रवण एवं उच्चारण से ही अत्यंत शांति का अनुभव हो जाता है। अतः शांत रस प्रधान रागों में ऐसे वर्ण के स्वरूप एवं अधिष्ठाता का स्मरण राग रस को अधिक प्रभावी बना देगा।

इस प्रकार शुभंकर द्वारा निर्धारित रसों में निहित दैवीय भाव रागों के अनुसार अनुभूत रसों के माध्यम से रागों में दैवीय भाव की अनुभूति कराने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। वास्तव में स्वर, रस, भाव, प्रवृत्ति एवं प्रवृत्ति के अनुरूप मानवीय लिंगात्मक स्वरूप की निष्पत्ति, प्रयोजन एवं प्रवृत्ति के अनुकूल दैवीय स्वरूप की अवधारणा परस्पर एक दूसरे से क्रमवार श्रृंखलाबद्ध रूप से परस्पर सम्बन्धित है एवं जुड़ी हुई है। यदि इनकी सूक्ष्मता की ओर जाते हुए स्वर साधना एवं राग साधना की जाए तो वांछित परिणाम प्राप्त हो सकते हैं, एवं हो भी जाते हैं, अपेक्षा केवल प्रयत्नरत होने की है। यहां इन पुरा एवं मध्यकालीन विलक्षण विचारों को लिखित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयोजन तभी सफल हो सकता है जब इन विचारों को पढ़ने वाले इन विचारों को अपने क्रियात्मक पक्ष में प्रयुक्त करके देखें एवं अपनी मनोवृत्तियों को इस प्रकार से ढालने का प्रयत्न करें। परिणामस्वरूप प्राप्त रस की आनन्दानुभूति से सराबोर होकर सुनने वालों को भी इससे लाभान्वित कराएँ।

(Footnotes)

- ¹मानक हिंदी शब्दकोष –संकलनकर्ता – कृष्ण कान्त दीक्षित, सूर्यनारायण उपाध्याय – नवीन संस्करण – कमल प्रकाशन – नई दिल्ली
- ²संगीत मकरंद – नारद –प्रकाशक –संगीत कार्यालय, हाथरस –संस्करण – जनवरी – 1978 –श्लोक सं० – 47,48 पृष्ठ सं० – 8
- ³संगीत मकरंद – नारद –श्लोक सं० – 63,64 पृष्ठ सं० – 18
- ⁴रागकल्पद्रुम दूसरा खण्ड – कृष्णानन्दव्यास –प्रकाशक –श्री राज कमल सिंह कलकत्ता 1973 –पृष्ठ सं० – 26
- ⁵संगीत पत्रिका – फरवरी – 2013 – पृष्ठ सं० – 26
- ⁶हमारा संगीत –भाग – 5 – सुमन पाटणकर, एस० जी० पाटणकर, चंदकांत पाटणकर –प्रकाशक – संगीत कला केन्द्र बुलंदशहर, दिल्ली कार्यालय – षष्ठम् संस्करण – 1997 –पृष्ठ सं० – 131
- ⁷वही – पृष्ठ सं० – 159
- ⁸हमारा संगीत – भाग – 5 – सुमन पाटणकर, एस० जी० पाटणकर, चंदकांत पाटणकर – पृष्ठ सं० – 160
- ⁹वही – पृष्ठ सं० – 123
- ¹⁰संगीत दामोदर – शुभंकर –प्रकाशक – कलकत्ता संस्कृत कॉलेज रिसर्च सीराज न० XI –पृष्ठ सं० – 101
- ¹¹वही –पृष्ठ सं० – 101
- ¹²वही –पृष्ठ सं० – 103
- ¹³वही –पृष्ठ सं० – 103
- ¹⁴संगीत दामोदर – शुभंकर –पृष्ठ सं० – 106
- ¹⁵वही –पृष्ठ सं० – 110
- ¹⁶वही –पृष्ठ सं० – 111
- ¹⁷वही –पृष्ठ सं० – 112
- ¹⁸वही –पृष्ठ सं० – 115
- ¹⁹संगीत दामोदर – शुभंकर –पृष्ठ सं० – 116
- ²⁰वही –पृष्ठ सं० – 117
- ²¹वही –पृष्ठ सं० – 118